हरे कृष्ण

श्रीमद् भगवत गीता

अध्याय 16

|| दैवी और आसुरी स्वभाव ||

designed by
DigitalWebdia | bhaktiprasad.in

1-3.

श्रीभगवानुवाच |

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः |
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् || 16.1 ||

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् |
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् || 16.2 ||

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता |
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत || 16.3 ||

bhaktiprasad.in
Designed by DigitalWebdia.com

1-3.

Hindi

bhaktiprasad.in

भगवान् ने कहा - हे भरतपुत्र! निर्भयता, आत्मशुद्धि, आध्यात्मिक ज्ञान का अनुशीलन, दान, आत्म-संयम, यज्ञपरायणता, वेदाध्ययन, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्यता, क्रोधविहीनता, त्याग, शान्ति, छिद्रान्वेषण में अरुचि, समस्त जीवों पर करुण, लोभविहीनता, भद्रता, लज्जा, संकल्प, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, ईर्ष्या तथा सम्मान की अभिलाषा से मुक्ति - ये सारे दिव्य गुण हैं, जो दैवी प्रकृति से सम्पन्न देवतुल्य पुरुषों में पाये जाते हैं |

Designed by DigitalWebdia.com

1-3.

English

bhaktiprasad.in

The Blessed Lord said: **Fearlessness, purification of one's existence, cultivation** of spiritual knowledge, charity, self-control, performance of sacrifice, study of the Vedas, austerity and simplicity; nonviolence, truthfulness, freedom from anger; renunciation, tranquility, aversion to faultfinding, compassion and freedom from covetousness; gentleness, modesty and steady determination; vigor, forgiveness, fortitude, cleanliness, freedom from envy and the passion for honor-these transcendental qualities, O son of Bharata, belong to godly men endowed with divine nature.

Designed by DigitalWebdia.com

1-3.

तात्पर्य

पन्द्रहवें अध्याय के प्रारम्भ में इस भौतिक जगत् रूपी अश्वत्थ वृक्ष की व्याख्या की गई थी | उससे निकलने वाली अतिरिक्त जड़ों की तुलना जीवों के शुभ तथा अशुभ कर्मों से की गई थी | नवें अध्याय में भी देवों तथा असुरों का वर्णन हुआ है | अब, वैदिक अनुष्ठानों के अनुसार, सतोगुण में किये गये सारे कार्य मुक्तिपथ में प्रगति करने के लिए शुभ माने जाते हैं और ऐसे कार्यों को दैवी प्रकृति कहा जाता है | जो लोग इस दैवीप्रकृति में स्थित होते हैं, वे मुक्ति के पथ पर अग्रसर होते हैं | इसके विपरीत उन लोगों के लिए, जो रजो तथा तमोगुण में रहकर कार्य करते हैं, मुक्ति की कोई सम्भावना नहीं रहती | उन्हें या तो मनुष्य की तरह इसी भौतिक जगत् में रहना होता है या फिर वे पशुयोनि में या इससे भी निम्न योनियों में अवतरित होते हैं | इस सोलहवें अध्याय में भगवान् दैवीप्रकृति तथा उसके गुणों एवं आसुरी प्रकृति तथा उसके गुणों का समान रूप से वर्णन करते हैं | वे इन गुणों के लाभों तथा हानियों का भी वर्णन करते हैं | दिव्यगुणों या दैवीप्रवृत्तियों से युक्त उत्पन्न व्यक्ति के प्रसंग में प्रयुक्त अभिजातस्य शब्द बहुत सार-गर्भित है | दैवी परिवेश में सन्तान उत्पन्न करने को वैदिक शास्त्रों में गर्भाधान संस्कार कहा गया है | यदि माता-पिता चाहते हैं कि दिव्यगुणों से युक्त सन्तान उत्पन्न हो, तो उन्हें सामाजिक जीवन में मनुष्यों के लिए बताये गये दस नियमों का पालन करना चाहिए | भगवद्गीता में हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि अच्छी सन्तान उत्पन्न करने के निमित्त मैथुन-जीवन साक्षात् कृष्ण है | मैथुन-जीवन गर्हित नहीं है, यदि इसका कृष्णभावनामृत में प्रयोग किया जाय | जो लोग कृष्णभावनामृत में हैं, कम से कम उन्हें तो कुत्ते-बिल्लियों की तरह सन्तानें उत्पन्न नहीं करनी चाहिए | उन्हें ऐसी सन्तानें उत्पन्न करनी चाहिए जो जन्म लेने के पश्चात् कृष्णभावनाभावित हो सकें | कृष्णभावनामृत में तल्लीन माता-पिता से उत्पन्न सन्तानों को इतना लाभ तो मिलना ही चाहिए | वर्णाश्रमधर्म नामक सामाजिक संस्था - जो समाज को सामाजिक जीवन के चार विभागों एवं काम-धन्धों अथवा वर्णों के चार विभागों में विभाजित करती है - मानव समाज को जन्म के अनुसार विभाजित करने के उद्देश्य से नहीं है | ऐसा विभाजन शैक्षिक योग्यताओं के आधार पर किया जाता है |

तात्पर्य

ये विभाजन समाज में शान्ति तथा सम्पन्नता बनाये रखने के लिए है | यहाँ पर जिन गुणों का उल्लेख हुआ है, उन्हें दिव्य कहा गया है और वे आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति करने वाले व्यक्तियों के निमित्त हैं, जिससे वे भौतिक जगत् से मुक्त हो सकें | वर्णाश्रम संस्था में संन्यासी को समस्त सामाजिक वर्णों तथा आश्रमों में प्रधान या गुरु माना जाता है | ब्राह्मण को समाज के तीन वर्णों - क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों - का गुरु माना जाता है, लेकिन संन्यासी इस संस्था के शीर्ष पर होता है और ब्राह्मणों का भी गुरु माना जाता है | संन्यासी की पहली योग्यता निर्भयता होनी चाहिए | चूँकि संन्यासी को किसी सहायक के बिना एकाकी रहना होता है, अतएव भगवान् की कृपा ही उसका एकमात्र आश्रय होता है | जो यह सोचता है कि सारे सम्बन्ध तोड़ लेने के बाद मेरी रक्षा कौन करेगा, तो उसे संन्यास आश्रम स्वीकार नहीं करना चाहिए | उसे यह पूर्ण विश्वास होना चाहिए कि कृष्ण या अन्तर्यामी स्वरूप परमात्मा सदैव अन्तर में रहते हैं, वे सब कुछ देखते रहते हैं और जानते हैं कि कोई क्या करना चाहता है | इस तरह मनुष्य को दृढ़विश्वास होना चाहिए कि परमात्मा स्वरूप कृष्ण शरणागत व्यक्ति की रक्षा करेंगे | उसे सोचना चाहिए 'मैं कभी अकेला नहीं हूँ, भले ही मैं गहनतम जंगल में क्यों न रहूँ | मेरा साथ कृष्ण देंगे और सब तरह से मेरी रक्षा करेंगे |' ऐसा विश्वास अभयम् या निर्भयता कहलाता है | संन्यास आश्रम में व्यक्ति की ऐसी मनोदशा आवश्यक है | तब उसे अपने अस्तित्व को शुद्ध करना होता है | संन्यास आश्रम में पालन किये जाने के लिए अनेक विधि-विधान हैं | इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि संन्यासी को किसी स्त्री के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए | उसे एकान्त स्थान में स्त्री से बातें करने तक की मनाही है | भगवान् चैतन्य आदर्श संन्यासी थे और जब वे पुरी में रह रहे थे, तो उनकी भक्तिनों को उनके पास नमस्कार करने तक के लिए नहीं आने दिया जता था | उन्हें दूर से ही प्रणाम करने के लिए आदेश था | यह स्त्री जाति के प्रति घृणाभाव का चिह्न नहीं था, अपितु संन्यासी पर लगाया गया प्रतिबन्ध था कि उसे स्त्रियों के निकट संपर्क नहीं रखना चाहिए | मनुष्य को अपने अस्तित्व को शुद्ध बनाने के लिए जीवन की विशेष परिस्थिति (स्तर) में विधि-विधानों का पालन करना

तात्पर्य

होता है | संन्यासी के लिए स्त्रियों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध तथा इन्द्रियतृप्ति के लिए धन-संग्रह वर्जित हैं| आदर्श संन्यासी तो स्वयं भगवान् चैतन्य थे और उनके जीवन से हमें यह सीख लेनी चाहिए कि वे स्त्रियों के विषय में कितने कठोर थे | यद्यपि वे भगवान् के सबसे वदान्य अवतार माने जाते हैं, क्योंकि वे अधम से अधम बद्ध जीवों को स्वीकार करते थे, लेकिन जहाँ तक स्त्रियों की संगति का प्रश्न था, वे संन्यास आश्रम के विधि-विधानों का कठोरता से पालन करते थे | उनका एक निजी पार्षद, छोटा हरिदास, अन्य पार्षदों के साथ निरन्तर रहा, लेकिन किसी कारणवश उसने एक तरुणी को कामुक दृष्टि से देखा | भगवान् चैतन्य इतने कठोर थे कि उन्होंने उसे अपने पार्षदों की संगति से तुरन्त बाहर निकाल दिया | भगवान् चैतन्य ने कहा, 'जो संन्यासी या अन्य कोई व्यक्ति प्रकृति के चंगुल से छूटने का इच्छुक है और अपने को आध्यात्मिक प्रकृति तक ऊपर उठाना चाहता है तथा भगवान् के पास वापस जाना चाहता है, वह यदि भौतिक सम्पत्ति तथा स्त्री की ओर इन्द्रियतृप्ति के लिए देखता है - भले ही वह उनका भोग न करे, केवल उनकी ओर इच्छा-दृष्टि से देखे, तो भी वह इतना गर्हित है कि उसके लिए श्रेयस्कर होगा कि वह ऐसी अवैध इच्छाएँ करने के पूर्व आत्महत्या कर ले |' इस तरह शुद्धि की ये विधियाँ हैं | अगला गुण है, ज्ञानयोग व्यवस्थिति - ज्ञान के अनुशीलन में संलग्न रहना | संन्यासी का जीवन गृहस्थों तथा उन सबों को, जो आध्यात्मिक उन्नति के वास्तविक जीवन को भूल चुके हैं, ज्ञान वितरित करने के लिए होता है | संन्यासी से आशा की जाती है कि वह अपनी जीविका के लिए द्वार-द्वार भिक्षाटन करे, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वह भिक्षुक है | विनयशीलता भी आध्यात्मिकता में स्थित मनुष्य की एक योग्यता है | संन्यासी मात्र विनयशीलता वश द्वार-द्वार जाता है, भिक्षाटन के उद्देश्य से नहीं जाता, अपितु गृहस्थों को दर्शन देने तथा उनमें कृष्णभावनामृत जगाने के लिए जाता है | यह संन्यासी का कर्तव्य है | यदि वह वास्तव में उन्नत है और उसे गुरु का आदेश प्राप्त है, तो उसे तर्क तथा ज्ञान द्वारा कृष्णभावनामृत का उपदेश करना चाहिए और यदि वह इतना उन्नत नहीं है, तो उसे संन्यास आश्रम ग्रहण नहीं करना चाहिए | लेकिन यदि

तात्पर्य

किसी ने पर्याप्त ज्ञान के बिना संन्यास आश्रम स्वीकार कर लिया है, तो उसे ज्ञान अनुशीलन के लिए प्रामाणिक गुरु से श्रवण में रत होना चाहिए | संन्यासी को निर्भीक होना चाहिए, उसे सत्त्वसंशुद्धि तथा ज्ञानयोग में स्थित होना चाहिए | अगला गुण दान है | दान गृहस्थों के लिए है | गृहस्थों को चाहिए कि वे निष्कपटता से जीवनयापन करना सीखें और कमाई का पचास प्रतिशत विश्व भर में कृष्णभावनामृत के प्रचार में खर्च करें | इस प्रकार से गृहस्थ को चाहिए कि ऐसे कार्यों में लगे संस्थान-समितियों को दान दे | दान योग्य पात्र को दिया जाना चाहिए | जैसा आगे वर्णन किया जाएगा, दान भी कई तरह का होता है - यथा सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण में दिया गया दान | सतोगुण में दिए जाने वाले दान की संस्तुति शास्त्रों ने की है, लेकिन रजो तथा तमोगुण में दिये गये दान की संस्तुति नहीं है, क्योंकि यह धन का अपव्यय मात्र है | संसार भर में कृष्णभावनामृत के प्रसार हेतु ही दान दिया जाना चाहिए | ऐसा दान सतोगुणी होता है | जहाँ तक दम (आत्मसंयम) का प्रश्न है, यह धार्मिक समाज के अन्य आश्रमों के ही लिए नहीं है, अपितु गृहस्थ के लिए विशेष रूप से है | यद्यपि उसके पत्नी होती है, लेकिन उसे चाहिए कि व्यर्थ ही अपनी इन्द्रियों को विषयभोग की ओर न मोड़े | गृहस्थों पर भी मैथुन-जीवन के लिए प्रतिबन्ध है और इसका उपयोग केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए किया जाना चाहिए | यदि वह सन्तान नहीं चाहता, तो उसे अपनी पत्नी के साथ विषय-भोग में लिप्त नहीं होना चाहिए | आधुनिक समाज मैथुन-जीवन का भोग करने के लिए निरोध-विधियों का या अन्य घृणित विधियों का उपयोग करता है, जिससे सन्तान का उत्तरदायित्व न उठाना पड़े | यह दिव्य गुण नहीं, अपितु आसुरी गुण है | यदि कोई व्यक्ति, चाहे वह गृहस्थ ही क्यों न हो, आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करना चाहता है, तो उसे अपने मैथुन-जीवन पर संयम रखना होगा और उसे ऐसी सन्तान नहीं उत्पन्न करनी चाहिए, जो कृष्ण की सेवा में काम न आए | यदि वह ऐसी सन्तान उत्पन्न करता है, जो कृष्णभावनाभावित हो सके, तो वह सैकड़ों सन्तानें उत्पन्न कर सकता है | लेकिन ऐसी क्षमता के बिना किसी को इन्द्रियसुख के लिए काम-भोग में लिप्त नहीं होना चाहिए |

तात्पर्य

गृहस्थों को यज्ञ भी करना चाहिए, क्योंकि यज्ञ के लिए पर्याप्त धन चाहिए | ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम वालों के पास धन नहीं होता | वे तो भिक्षाटन करके जीवित रहते हैं | अतएव विभिन्न प्रकार के यज्ञ गृहस्थों के दायित्व हैं | उन्हें चाहिए कि वैदिक साहित्य द्वारा आदिष्ट अग्निहोत्र यज्ञ करें, लेकिन आज-कल ऐसे यज्ञ अत्यन्त खर्चीले हैं और हर किसी गृहस्थ के लिए इन्हें सम्पन्न कर पाना कठिन है | इस युग के लिए संस्तुत सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है - संकीर्तनयज्ञ | यह संकीर्तनयज्ञ - हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे - का जप सर्वोतम और सबसे कम खर्च वाला यज्ञ है और प्रत्येक व्यक्ति इसे करके लाभ उठा सकता है | अतएव दान, इन्द्रियसंयम तथा यज्ञ करना - ये तीन बातें गृहस्थ के लिए हैं | स्वाध्याय या वेदाध्ययन ब्रह्मचर्य आश्रम या विद्यार्थी जीवन के लिए है | ब्रह्मचारियों का स्त्रियों से किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं होना चाहिए | उन्हें ब्रह्मचर्यजीवन बिताना चाहिए और आध्यात्मिक ज्ञान के अनुशीलन हेतु, अपना मन वेदों के अध्ययन में लगाना चाहिए | यही स्वाध्याय है | तपस् या तपस्या वानप्रस्थों के लिए है | मनुष्य को जीवन भर गृहस्थ ही नहीं बने रहना चाहिए | उसे स्मरण रखना होगा कि जीवन के चार विभाग हैं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास | अतएव गृहस्थ रहने के बाद उसे विरक्त हो जाना चाहिए | यदि कोई एक सौ वर्ष जीवित रहता है, तो उसे २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य, २५ वर्ष तक गृहस्थ, २५ वर्ष तक वानप्रस्थ तथा २५ वर्ष तक संन्यास का जीवन बिताना चाहिए | ये वैदिक धार्मिक अनुशासन के नियम हैं | गृहस्थ जीवन से विरक्त होने पर मनुष्य को शरीर, मन तथा वाणी का संयम बरतना चाहिए | यही तपस्या है | समग्र वर्णाश्रमधर्म समाज ही तपस्या के निमित्त है | तपस्या के बिना किसी को मुक्ति नहीं मिल सकती | इस सिद्धान्त की संस्तुती न तो वैदिक साहित्य में की गई है, न भगवद्गीता में कि जीवन में तपस्या की आवश्यकता नहीं है और कोई कल्पनात्मक चिन्तन करता रहे तो सब कुछ ठीक हो जायगा | ऐसे सिद्धान्त तो उन दिखावटी अध्यात्मवादियों द्वारा बनाये जाते हैं

तात्पर्य

जो अधिक से अधिक अनुयायी बनाना चाहते हैं | यदि प्रतिबन्ध हों, विधि-विधान न हों तो लोग इस प्रकार आकर्षित न हों | अतएव जो लोग धर्म के नाम पर अनुयायी चाहते हैं, वे केवल दिखावा करते हैं, वे अपनी विद्यार्थिओं के जीवनों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगते और न ही अपने जीवन पर | लेकिन वेदों में ऐसी विधि को स्वीकृति नहीं की गई |जहाँ तक ब्राह्मणों की सरलता (आर्जवम्) का सम्बन्ध है, इसका पालन न केवल किसी एक आश्रम में किया जाना चाहिए, अपितु चारों आश्रमों के प्रत्येक सदस्य को करना चाहिए चाहे वह ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ अतवा संन्यास आश्रम में हो | मनुष्य को अत्यन्त सरल तथा सीधा होना चाहिए | अहिंसा का अर्थ है किसी जीव के प्रगतिशील जीवन को न रोकना | किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि शरीर के वध किये जाने के बाद आत्मा-स्फुलिंग नहीं मरता, इसीलिए इन्द्रियतृप्ति के लिए पशुवध करने में कोई हानि नहीं है | प्रचुर अन्न, फल तथा दुग्ध की पूर्ति होते हुए भी आजकल लोगों में पशुओं का मांस खाने की लत पड़ी हुई है | लेकिन पशुओं के वध की कोई आवश्यकता नहीं है | यह आदेश हर एक के लिए है | जब कोई विकल्प न रहे, तभी पशुवध किया जाय | लेकिन इसकी यज्ञ में बलि की जाय | जो भी हो, जब मानवता के लिए प्रचुर भोजन हो, तो जो लोग आध्यात्मिक साक्षात्कार में प्रगति करने के इच्छुक हैं, उन्हें पशुहिंसा नहीं करनी चाहिए | वास्तविक अहिंसा का अर्थ है किसी की प्रगतिशील जीवन को रोका न जाय | पशु भी अपने विकास काल में एक पशुयोनि से दूसरी पशुयोनि में देहान्तरण करके प्रगति करते हैं | यदि किसी ऐसे पशु का वध कर दिया जाता है, तो उसकी प्रगति रुक जाती है | यदि कोई पशु किसी शरीर में बहुत दिनों से या वर्षों से रह रहा हो और उसे असमय ही मार दिया जाय तो उसे पुनः उसी जीवन में वापस आकर शेष दिन पूरे करने के बाद ही दूसरी योनि में जाना पड़ता है | अतएव अपने स्वाद की तुष्टि के लिए किसी की प्रगति को नहीं रोकना चाहिए | यही अहिंसा है | सत्यम् का अर्थ है कि मनुष्य को अपने स्वार्थ के लिए सत्य को ताड़ना-मरोड़ना नहीं चाहिए | वैदिक साहित्य में कुछ अंश अत्यन्त कठिन हैं, लेकिन उनका अर्थ किसी प्रामाणिक गुरु से जानना चाहिए |

तात्पर्य

वेदों को समझने की यही विधि है | श्रुति का अर्थ है, किसी अधिकारी से सुनना | मनुष्य को चाहिए कि अपने स्वार्थ के लिए कोई विवेचना न गढ़े | भगवद्गीता की अनेक टीकाएँ हैं, जिसमें मूलपाठ की गलत व्याख्या की गई है | शब्द का वास्तविक भावार्थ प्रस्तुत किया जाना चाहिए और इसे प्रामाणिक गुरु से ही सीखना चाहिए | अक्रोध का अर्थ है, क्रोध को रोकना | यदि कोई क्षुब्ध बनावे तो ही सहिष्णु बने रहना चाहिए, क्योंकि एक बार क्रोध करने पर सारा शरीर दूषित हो जाता है | क्रोध रजोगुण तथा काम से उत्पन्न होता है | अतएव जो योगी है उसे क्रोध पर नियन्त्रण रखना चाहिए | अपैशुनम् का अर्थ है कि दूसरे के दोष न निकाले और व्यर्थ ही उन्हें सही न करे | निस्सन्देह चोर को चोर कहना छिद्रान्वेषण नहीं है, लेकिन निष्कपट व्यक्ति को चोर कहना उस व्यक्ति के लिए परम अपराध होगा जो आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करना चाहता है | ह्री का अर्थ है कि मनुष्य अत्यन्त लज्जाशील हो और कोई गर्हित कार्य न करे | अचापलम् या संकल्प का अर्थ है कि मनुष्य किसी प्रयास से विचलित या उदास न हो | किसी प्रयास में भले ही असफलता क्यों न मिले, किन्तु मनुष्य को उसके लिए खिन्न नहीं होना चाहिए | उसे धैर्य तथा संकल्प के साथ प्रगति करनी चाहिए | यहाँ पर प्रयुक्त तेजस् शब्द क्षत्रियों के निमित्त है | क्षत्रियों को अत्यन्त बलशाली होना चाहिए, जिससे वह निर्बलों की रक्षा कर सकें | उन्हें अहिंसक होने का दिखावा नहीं करना चाहिए | यदि हिंसा की आवश्यकता पड़े, तो हिंसा दिखानी चाहिए | लेकिन जो व्यक्ति अपने शत्रु का दमन कर सकता है, उसे चाहिए कि कुछ विशेष परिस्थितियों में क्षमा कर दे | वह छोटे अपराधों के लिए क्षमा-दान कर सकता है |

तात्पर्य

शौचम् का अर्थ है पवित्रता, जो न केवल मन तथा शरीर की हो, अपितु व्यवहार में भी हो | यह विशेष रूप से वणिक वर्ग के लिए है | उन्हें चाहिए कि वे काला बाजारी न करें | नाति-मानिता अर्थात् सम्मान की आशा न करना शूद्रों अर्थात् श्रमिक वर्ग के लिए है, जिन्हें वैदिक आदेशों के अनुसार चारों वर्णों में सबसे निम्न माना जाता है | उन्हें वृथा सम्मान या प्रतिष्ठा से फूलना नहीं चाहिए, बल्कि अपनी मर्यादा में बने रहना चाहिए | शूद्रों का कर्तव्य है कि सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए वे उच्चवर्णों का सम्मान करें |

यहाँ पर वर्णित छब्बीसों गुण दिव्य हैं | वर्णाश्रमधर्म के अनुसार इनका आचरण होना चाहिए | सारांश यह है कि भले ही भौतिक परिस्थितियाँ शौचनीय हों, यदि सभी वर्णों के लोग इन गुणों का अभ्यास करें, तो वे क्रमशः आध्यात्मिक अनुभूति के सर्वोच्च पद तक उठ सकते हैं |

4.

bhaktiprasad.in

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च |
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् || 16.4 ||

हे पृथापुत्र ! दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता तथा अज्ञान - ये सारे आसुरी स्वभाव वालों के गुण हैं |

Arrogance, pride, anger, conceit, harshness and ignorance-these qualities belong to those of demonic nature, O son of Prithā.

Designed by DigitalWebdia.com

4.

तात्पर्य

इस श्लोक में नरक के राजमार्ग का वर्णन है | आसुरी स्वभाव वाले लोग धर्म तथा आत्मविद्या की प्रगति का आडम्बर रचना चाहते हैं, भले ही वे उनके सिद्धान्तों का पालन न करते हों | वे सदैव किसी शिक्षा या प्रचुर सम्पत्ति का अधिकारी होने का दर्प करते हैं | वे चाहते हैं कि अन्य लोग उनकी पूजा करें और सम्मान दिखलाएँ, भले ही वे सम्मान के योग्य न हों | वे छोटी-छोटी बातों पर क्रुद्ध हो जाते हैं खरी-खोटी सुनाते हैं और नम्रता से नहीं बोलते | वे यह नहीं जानते कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए | वे अपनी इच्छानुसार, सनकवश, सारे कार्य करते हैं, वे किसी प्रमाण को नहीं मानते | वे ये आसुरी गुण तभी से प्राप्त करते हैं, जब वे अपनी माताओं के गर्भ में होते हैं और ज्यों-ज्यों वे बढ़ते हैं, त्यों-त्यों ये अशुभ गुण प्रकट होते हैं |

5.

bhaktiprasad.in

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता |
मा श्रुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव || 16.5 ||

दिव्य गुण मोक्ष के लिए अनुकूल हैं और आसुरी गुण बन्धन दिलाने के लिए हैं । हे पाण्डुपुत्र ! तुम चिन्ता मत करो, क्योंकि तुम दैवी गुणों से युक्त होकर जन्मे हो ।

The transcendental qualities are conducive to liberation, whereas the demonic qualities make for bondage. Do not worry, O son of Pāndu, for you are born with the divine qualities.

Designed by DigitalWebdia.com

5.

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण अर्जुन को यह कह कर प्रोत्साहित करते हैं कि वह आसुरी गुणों के साथ नहीं जन्मा है । युद्ध में उसका सम्मिलित होना आसुरी नहीं है, क्योंकि वह उसके गुण-दोषों पर विचार कर रहा था । वह यह विचार कर रहा था कि भीष्म तथा द्रोण जैसे प्रतिष्ठित महापुरुषों का वध किया जाये या नहीं, अतएव वह न तो क्रोध के वशीभूत होकर कार्य कर रहा था, न झूठी प्रतिष्ठा या निष्ठुरता के अधीन होकर । अतएव वह आसुरी स्वभाव का नहीं था । क्षत्रिय के लिए शत्रु पर बाण बरसाना दिव्य माना जाता है और ऐसे कर्तव्य से विमुख होना आसुरी । अतएव अर्जुन के लिए शोक (संताप) करने का कोई कारण न था । जो कोई भी जीवन के विभिन्न आश्रमों के विधानों का पालन करता है, वह दिव्य पद पर स्थित होता है ।

6.

bhaktiprasad.in

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च |
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु || 16.6 ||

हे पृथापुत्र ! इस संसार में सृजित प्राणी दो प्रकार के हैं - दैवी तथा आसुरी । मैं पहले ही विस्तार से तुम्हें दैवी गुण बतला चुका हूँ । अब मुझसे आसुरी गुणों के विषय में सुनो ।

O son of Parthā, in this world there are two kinds of created beings. One is called the divine and the other demonic. I have already explained to you at length the divine qualities. Now hear from Me of the demoniac.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

अर्जुन को यह कह कर कि वह दैवी गुणों से उत्पन्न होकर जन्मा है, भगवान् कृष्ण अब उसे आसुरी गुण बताते हैं । इस संसार में बद्ध जीव दो श्रेणियों में बँटे हुए हैं । जो जीव दिव्य गुणों से सम्पन्न होते हैं, वे नियमित जीवन बिताते हैं अर्थात् वे शास्त्रों तथा विद्वानों द्वारा बताये गये आदेशों का निर्वाह करते हैं । मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक शास्त्रों के अनुसार ही कर्तव्य निभाए, यह प्रकृति दैवी कहलाती है । जो शास्त्र विहित विधानों को नहीं मानता और अपनी सनक के अनुसार कार्य करता है, वह आसुरी कहलाता है । शास्त्र के विधिविधानों के प्रति आज्ञा भाव ही एकमात्र कसौटी है, अन्य नहीं । वैदिक साहित्य में उल्लेख है कि देवता तथा असुर दोनों ही प्रजापति से उत्पन्न हुए, अन्तर इतना ही है कि एक श्रेणी के लोग वैदिक आदेशों को मानते हैं और दूसरे नहीं मानते ।

7.

bhaktiprasad.in

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः |
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते || 16.7 ||

जो आसुरी हैं , वे यह नहीं जानते कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए । उनमें न तो पवित्रता, न उचित आचरण और न ही सत्य पाया जाता है ।

Those who are demoniac do not know what is to be done and what is not to be done. Neither cleanliness nor proper behavior nor truth is found in them.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

प्रत्येक सभ्य मानव समाज में कुछ आचार-संहिताएँ होती हैं, जिनका प्रारम्भ से पालन करना होता है । विशेषतया आर्यगण, जो वैदिक सभ्यता को मानते हैं और अत्यन्त सभ्य माने जाते हैं, इनका पालन करते हैं । किन्तु जो शास्त्रीय आदेशों को नहीं मानते, वे असुर समझे जाते हैं । इसीलिए यहाँ कहा गया है कि असुरगण न तो शास्त्रीय नियमों को जानते हैं, न उनमें इनके पालन करने की प्रवृत्ति पाई जाती है । उनमें से अधिकांश इन नियमों को नहीं जानते और जो थोड़े से लोग जानते भी हैं, उनमें इनके पालन करने की प्रवृत्ति नहीं होती । उन्हें न तो वैदिक आदेशों में कोई श्रद्धा होती है , न ही वे उसके अनुसार कार्य करने के इच्छुक होते हैं । असुरगण न तो बाहर से, न भीतर से स्वच्छ होते हैं । मनुष्य को चाहिए कि स्नान करके, दंतमंजन करके, बाल बना कर, वस्त्र बदल कर शरीर को स्वच्छ रखे । जहाँ तक आन्तरिक स्वच्छता की बात है, मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव ईश्वर के पवित्र नामों का स्मरण करे और हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करे । असुरगण बाह्य तथा आन्तरिक स्वच्छता के इन नियमों को न तो चाहते हैं , न इनका पालन ही करते हैं ।

तात्पर्य

जहाँ तक आचरण की बात है, मानव आचरण का मार्गदर्शन करने वाले अनेक विधि-विधान हैं, जैसे मनु-संहिता, जो मानवजाति का अधिनियम है । यहाँ तक कि आज भी सारे हिन्दू मनुसंहिता का ही अनुगमन करते हैं । इसी ग्रंथ से उत्तराधिकार तथा अन्य विधि सम्बन्धी बातें ग्रहण की जाती हैं । मनुसंहिता में स्पष्ट कहा गया है कि स्त्री को स्वतन्त्रता न प्रदान की जाय । इसका अर्थ यह नहीं होता कि स्त्रियों को दासी बना कर रखा जाय । वे तो बालकों के समान हैं । बालकों को स्वतन्त्रता नहीं दी जाती, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे दास बना कर रखे जाते हैं । लेकिन असुरों ने ऐसे आदेशों की उपेक्षा कर दी है और वे सोचने लगे हैं कि स्त्रियों को पुरुषों के समान ही स्वतन्त्रता प्रदान की जाय । लेकिन इससे संसार की सामाजिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ । वास्तव में स्त्री को जीवन की प्रत्येक अवस्था में सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए । उसके बाल्यकाल में पिता द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए, तारुण्य में पति द्वारा और बुढ़ापे में बड़े पुत्रों द्वारा । मनु-संहिता के अनुसार यही उचित सामाजिक आचरण है । लेकिन आधुनिक शिक्षा ने नारी जीवन का एक अतिरंजित अहंकारपूर्ण बोध उत्पन्न कर दिया है, अतएव अब विवाह एक कल्पना बन चुका है । स्त्री की नैतिक स्थिति भी अब बहुत अच्छी नहीं रह गई है । अतएव असुरगण कोई ऐसा उपदेश ग्रहण नहीं करते, जो समाज के लिए अच्छा हो । चूँकि वे महर्षियों के अनुभवों तथा उनके द्वारा निर्धारित विधि-विधानों का पालन नहीं करते , अतएव आसुरी लोगों की सामाजिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय है ।

8.

bhaktiprasad.in

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् |
अपरस्परससम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् || 16.8 ||

वे कहते हैं कि यह जगत् मिथ्या है, इसका कोई आधार नहीं है और इसका नियमन किसी ईश्वर द्वारा नहीं होता । उनका कहना है कि यह कामेच्छा से उत्पन्न होता है और काम के अतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं है ।

They say that this world is unreal, that there is no foundation and that there is no God in control. It is produced of sex desire, and has no cause other than lust.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

आसुरी लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह जगत् मायाजाल है । इसका न कोई कारण है, न कार्य, न नियामक, न कोई प्रयोजन - हर वस्तु मिथ्या है । उनका कहना है कि दृश्य जगत् आकस्मिक भौतिक क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं के कारण है । वे यह नहीं सोचते कि ईश्वर ने किसी प्रयोजन से इस संसार की रचना की है । उनका अपना सिद्धान्त है कि यह संसार अपने आप उत्पन्न हुआ है और यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि इसके पीछे किसी ईश्वर का हाथ है । उनके लिए आत्मा तथा पदार्थ में कोई अन्तर नहीं होता और वे परम आत्मा को स्वीकार नहीं करते । उनके लिए हर वस्तु पदार्थ मात्र है और यह पूरा जगत् मानो अज्ञान का पिण्ड हो । उनके अनुसार प्रत्येक वस्तु शून्य है और जो भी सृष्टि दिखती है, वह केवल दृष्टि-भ्रम के कारण है । वे इसे सच मान बैठते हैं कि विभिन्नता से पूर्ण यह सारी सृष्टि अज्ञान का प्रदर्शन है । जिस प्रकार स्वप्न में हम ऐसी अनेक वस्तुओं की सृष्टि कर सकते हैं, जिनका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं होता, अतएव जब हम जाग जाते हैं, तो देखते हैं कि सब कुछ स्वप्नमात्र था । लेकिन वास्तव में, यद्यपि असुर यह कहते हैं कि जीवन स्वप्न है, लेकिन वे इस स्वप्न को भोगने में बड़े कुशल होते हैं । अतएव वे ज्ञानार्जन करने के बजाय अपने स्वप्नलोक में अधिकाधिक उलझ जाते हैं । उनकी मान्यता है कि जिस प्रकार शिशु केवल स्त्रीपुरुष के सम्भोग का फल है, उसी तरह यह संसार बिना किसी आत्मा के उत्पन्न हुआ है ।

तात्पर्य

उनके लिए यह पदार्थ का संयोगमात्र है, जिसने जीवों को उत्पन्न किया, अतएव आत्मा के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता । जिस प्रकार अनेक जीवित प्राणी आकरण पसीने ही से (स्वेदज) तथा मृत शरीर से उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार यह सारा जीवित संसार दृश्य जगत् के भौतिक संयोगों से प्रकट हुआ है । अतएव प्रकृति ही इस संसार की कारणस्वरूपा है, इसका कोई अन्य कारण नहीं है । वे भगवद्गीता में कहे गये कृष्ण के इन वचनों को नहीं मानते - मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् - सारा भौतिक जगत् मेरे ही निर्देश के अन्तर्गत गतिशील है । दूसरे शब्दों में, असुरों को संसार की सृष्टि के विषय में पूरा-पूरा ज्ञान नहीं है, प्रत्येक का अपना कोई न कोई सिद्धान्त है । उनके अनुसार शास्त्रों की कोई एक व्याख्या दूसरी व्याख्या के ही समान है, क्योंकि वे शास्त्रीय आदेशों के मानक ज्ञान में विश्वास नहीं करते ।

9.

bhaktiprasad.in

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः |
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः || 16.9 ||

ऐसे निष्कर्मों का अनुगमन करते हुए आसुरी लोग, जिन्होंने आत्म-ज्ञान खो दिया है और जो बुद्धिहीन हैं, ऐसे अनुपयोगी एवं भयावह कार्यों में प्रवृत्त होते हैं जो संसार का विनाश करने के लिए होता है ।

Following such conclusions, the demoniac, who are lost to themselves and who have no intelligence, engage in unbeneficial, horrible works meant to destroy the world.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

आसुरी लोग ऐसे कार्यों में व्यस्त रहते हैं जिससे संसार का विनाश हो जाये । भगवान् यहाँ कहते हैं कि वे कम बुद्धि वाले हैं । भौतिकवादी, जिन्हें ईश्वर का कोई बोध नहीं होता, सोचते हैं कि वे प्रगति कर रहे हैं । लेकिन भगवद्गीता के अनुसार वे बुद्धिहीन तथा समस्त विचारों से शून्य होते हैं । वे इस भौतिक जगत् का अधिक से अधिक भोग करने का प्रयत्न करते हैं, अतएव इन्द्रियतृप्ति के लिए कुछ न कुछ नया अविष्कार करते रहते हैं । ऐसे भौतिक अविष्कारों को मानव सभ्यता का विकास माना जाता है, लेकिन इसका दुष्परिणाम यह होता है कि लोग अधिकाधिक हिंसक तथा क्रूर होते जाते हैं - वे पशुओं के प्रति क्रूर हो जाते हैं और अन्य मनुष्यों के प्रति भी । उन्हें इसका कोई ज्ञान नहीं कि एक दूसरे से किस प्रकार व्यवहार किया जाय । आसुरी लोगों में पशु वध अत्यन्त प्रधान होता है । ऐसे लोग संसार के शत्रु समझे जाते हैं, क्योंकि वे अन्ततः ऐसा अविष्कार कर लेंगे या कुछ ऐसी सृष्टि कर देंगे जिससे सबका विनाश हो जाय । अप्रत्यक्षतः यह श्लोक नाभिकीय अस्त्रों के अविष्कार की पूर्व सूचना देता है, जिसका आज सारे विश्व को गर्व है । किसी भी क्षण युद्ध हो सकता है और ये परमाणु हथियार विनाशलीला उत्पन्न कर सकते हैं । ऐसी वस्तुएँ संसार के विनाश के उद्देश्य से ही उत्पन्न की जाती हैं और यहाँ पर इसका संकेत किया गया है । ईश्वर के प्रति अविश्वास के कारण ही ऐसे हथियारों का अविष्कार मानव समाज में किया जाता है - वे संसार की शान्ति तथा सम्पन्नता के लिए नहीं होते ।

10.

bhaktiprasad.in

कामाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः |
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः || 16.10 ||

कभी न संतुष्ट होने वाले काम का आश्रय लेकर तथा गर्व के मद एवं मिथ्या प्रतिष्ठा में डूबे हुए आसुरी लोग इस तरह मोहग्रस्त होकर सदैव क्षणभंगुर वस्तुओं के द्वारा अपवित्र कर्म का व्रत लिए रहते हैं |

The demoniac, taking shelter of insatiable lust, pride and false prestige, and being thus illusioned, are always sworn to unclean work, attracted by the impermanent.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यहाँ पर आसुरी प्रवृत्ति का वर्णन हुआ है | असुरों में काम कभी तृप्त नहीं होता | वे भौतिक भोग के लिए अपनी अतृप्त इच्छाएँ बढ़ाते चले जाते हैं | यद्यपि वे क्षणभंगुर वस्तुओं को स्वीकार करने के कारण सदैव चिन्तामग्न रहते हैं, तो भी वे मोहवश ऐसे कार्य करते जाते हैं | उन्हें कोई ज्ञान नहीं होता, अतएव वे यह नहीं कह पाते कि वे गलत दिशा में जा रहे हैं | क्षणभंगुर वस्तुओं को स्वीकार करने के कारण वे अपना निजी ईश्वर निर्माण कर लेते हैं, अपने निजी मन्त्र बना लेते हैं और तदानुसार कीर्तन करते हैं | इसका फल यह होता है कि वे दो वस्तुओं की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होते हैं - कामभोग तथा सम्पत्ति संचय | इस प्रसंग में अशुचि-व्रताः शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है 'अपवित्र व्रत' | ऐसे आसुरी लोग मद्य, स्त्रियों, द्यूत क्रीडा तथा मांसाहार के प्रति आसक्त होते हैं - ये ही उनकी अशुचि अर्थात् अपवित्र (गंदी) आदतें हैं | दर्प तथा अहंकार से प्रेरित होकर वे ऐसे धार्मिक सिद्धान्त बनाते हैं, जिनकी अनुमति वैदिक आदेश नहीं देते | यद्यपि ऐसे आसुरी लोग अत्यन्त निन्दनीय होते हैं, लेकिन संसार में कृत्रिम साधनों से ऐसे लोगों का झूठा सम्मान किया जाता है | यद्यपि वे नरक की ओर बढ़ते रहते हैं, लेकिन वे अपने को बहुत बड़ा मानते हैं |

11-15.

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः |
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः || 16.11 ||

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः |
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् || 16.12 ||

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् |
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् || 16.13 ||

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि |
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी || 16.14 ||

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया |
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानमोहिताः || 16.15 ||

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

bhaktiprasad.in

16.11-12: उनका मानना है कि जीवन के अंत तक इंद्रियों को तृप्त करना मानव सभ्यता की प्रमुख आवश्यकता है। इस प्रकार उनकी चिंता का कोई अंत नहीं है। सैकड़ों-हजारों इच्छाओं, काम और क्रोध से बंधे हुए, वे इन्द्रियतृप्ति के लिए अवैध साधनों से धन प्राप्त करते हैं।

16.13-15: आसुरी व्यक्ति सोचता है: "आज मेरे पास इतना धन है, और मैं अपनी योजनाओं के अनुसार अधिक प्राप्त करूंगा। अभी मेरा है, और यह भविष्य में और अधिक बढ़ेगा। वह मेरा दुश्मन है। , और मैंने उसे मार डाला है, और मेरा दूसरा दुश्मन भी मारा जाएगा। मैं सब कुछ का स्वामी हूं, मैं भोक्ता हूं, मैं सिद्ध, शक्तिशाली और खुश हूं। मैं सबसे अमीर आदमी हूं, जो कुलीन रिश्तेदारों से घिरा हुआ है। कोई नहीं है मैं कितना शक्तिशाली और धन्य हूं। मैं यज्ञ करूंगा, मैं कुछ दान करूंगा, और इस प्रकार मैं आनन्दित रहूंगा। इस प्रकार ऐसे व्यक्ति अज्ञानता के जाल में फँस जाते हैं।

Designed by DigitalWebdia.com

bhaktiprasad.in

16.11-12: They believe that to gratify the senses unto the end of life is the prime necessity of human civilization. Thus there is no end to their anxiety. Being bound by hundreds and thousands of desires, by lust and anger, they secure money by illegal means for sense gratification.

16.13-15: The demoniac person thinks: "So much wealth do I have today, and I will gain more according to my schemes. So much is mine now, and it will increase in the future, more and more. He is my enemy, and I have killed him; and my other enemy will also be killed. I am the lord of everything, I am the enjoyer, I am perfect, powerful and happy. I am the richest man, surrounded by aristocratic relatives. There is none so powerful and happy as I am. I shall perform sacrifices, I shall give some charity, and thus I shall rejoice." In this way, such persons are deluded by ignorance.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

आसुरी लोग स्वीकार करते हैं कि इंद्रियों का भोग जीवन का अंतिम लक्ष्य है, और इस अवधारणा को वे मृत्यु तक बनाए रखते हैं। वे मृत्यु के बाद के जीवन में विश्वास नहीं करते हैं, और वे यह नहीं मानते हैं कि व्यक्ति अपने कर्म, या इस दुनिया में गतिविधियों के अनुसार विभिन्न प्रकार के शरीर धारण करता है। जीवन के लिए उनकी योजनाएँ कभी समाप्त नहीं होती हैं, और वे योजना-दर-योजना तैयार करते रहते हैं, जो कभी भी समाप्त नहीं होती हैं। हमारे पास ऐसी आसुरी मानसिकता वाले व्यक्ति का व्यक्तिगत अनुभव है, जो मृत्यु के समय भी चिकित्सक से अनुरोध कर रहा था कि वह अपने जीवन को चार साल और बढ़ाए क्योंकि उसकी योजनाएँ अभी पूरी नहीं हुई थीं। ऐसे मूर्ख लोग नहीं जानते कि वैद्य एक क्षण के लिए भी जीवन नहीं बढ़ा सकता। जब नोटिस होता है, तो आदमी की इच्छा पर कोई विचार नहीं होता है। प्रकृति के नियम आनंद लेने के लिए नियत से आगे एक सेकंड की अनुमति नहीं देते हैं। आसुरी व्यक्ति, जिसे अपने भीतर ईश्वर या परमात्मा में कोई विश्वास नहीं है, वह केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए सभी प्रकार के पाप कर्म करता है। वह नहीं जानता कि उसके हृदय में साक्षी बैठा है। परमात्मा व्यक्तिगत आत्मा की गतिविधियों को देख रहा है। जैसा कि वैदिक साहित्य, उपनिषदों में कहा गया है, एक पेड़ में दो पक्षी बैठे हैं; एक अभिनय कर रहा है और शाखाओं के फल का आनंद ले रहा है या भोग रहा है, और दूसरा साक्षी है। लेकिन जो आसुरी है, उसे न तो वैदिक शास्त्रों का ज्ञान है और न ही उसकी कोई आस्था है। इसलिए वह इंद्रियों के भोग के लिए कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र महसूस करता है, परिणाम की परवाह किए बिना।

16.

bhaktiprasad.in

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः |
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ || 16.16 ||

इस प्रकार अनेक चिन्ताओं से उद्विग्न होकर तथा मोह जाल में बँधकर वे इन्द्रियभोग में अत्यधिक आसक्त हो जाते हैं और नरक में गिरते हैं ।

Thus perplexed by various anxieties and bound by a network of illusions, one becomes too strongly attached to sense enjoyment and falls down into hell.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

आसुरी व्यक्ति धन अर्जित करने की इच्छा की कोई सीमा नहीं जानता । उसकी इच्छा असीम बनी रहती है । वह केवल यही सोचता रहता है कि उसके पास इस समय कितनी सम्पत्ति है और ऐसी योजना बनाता है कि सम्पत्ति का संग्रह बढ़ता ही जाय । इसीलिए वह किसी भी पापपूर्ण साधन को अपनाने में झिझकता नहीं और अवैध तृप्ति के लिए कालाबाजारी करता है । वह पहले से अपनी अधिकृत सम्पति, यथा भूमि, परिवार, घर तथा बैंक पूँजी पर मुग्ध रहता है और उनमें वृद्धि के लिए सदैव योजनाएँ बनाता रहता है । उसे अपनी शक्ति पर ही विश्वास रहता है और वह यह नहीं जानता कि उसे जो लाभ हो रहा है वह उसके पूर्व जन्म के पूण्य कर्मों का फल है । उसे ऐसी वस्तुओं का संचय करने का अवसर इसीलिए मिला है, लेकिन उसे पूर्व जन्म के कारणों का कोई बोध नहीं होता । वह यही सोचता है कि उसकी सारी सम्पत्ति उसके निजी उद्योग से है । आसुरी व्यक्ति अपने बाहु-बल पर विश्वास करता है, कर्म के नियम पर नहीं । कर्म-नियम के अनुसार पूर्वजन्म में उत्तम कर्म करने के फलस्वरूप मनुष्य उच्चकुल में जन्म लेता है, या धनवान बनता है या सुशिक्षित बनता है, या बहुत सुन्दर शरीर प्राप्त करता है । आसुरी व्यक्ति सोचता है कि ये चीजें आकस्मिक हैं और उसके बाहुबल (सामर्थ्य) के फलस्वरूप हैं । उसे विभिन्न प्रकार के लोगों, सुन्दरता तथा शिक्षा के पीछे किसी प्रकार की योजना (व्यवस्था) नहीं प्रतीत होती । ऐसे आसुरी मनुष्य की प्रतियोगिता में जो भी सामने आता है, वह उसका शत्रु बन जाता है । ऐसे अनेक आसुरी व्यक्ति होते हैं और इनमें से प्रत्येक अन्यों का शत्रु होता है । यह शत्रुता पहले मनुष्यों के बीच, फिर परिवारों के बीच, तब समाजों में और अन्ततः राष्ट्रों के बीच बढ़ती जाती है । अतएव विश्वभर में निरन्तर संघर्ष, युद्ध तथा शत्रुता बनी हुई है ।

तात्पर्य

प्रत्येक आसुरी व्यक्ति सोचता है कि वह अन्य सभी लोगों की बलि करके रह सकता है । सामान्यतया ऐसा व्यक्ति स्वयं को परम ईश्वर मानता है और आसुरी उपदेशक अपने अनुयायियों से कहता है कि, 'तुम लोग ईश्वर को अन्यत्र क्यों ढूँढ रहे हो? तुम स्वयं अपने ईश्वर हो! तुम जो चाहो कर सकते हो | ईश्वर पर विश्वास मत करो । ईश्वर को दूर करो । ईश्वर मृत है ।' ये ही आसुरी लोगों के उपदेश हैं ।

यद्यपि आसुरी मनुष्य अन्यों को अपने ही समान या अपने से बढ़कर धनी और प्रभावशाली देखता है, तो भी वह सोचता है कि उससे बढ़कर न तो कोई धनी है और न प्रभावशाली । जहाँ तक उच्च लोकों में जाने की बात है वे यज्ञों को सम्पन्न करने में विश्वास नहीं करते । वे सोचते हैं कि वे अपनी यज्ञ-विधि का निर्माण करेंगे और कोई ऐसे मशीन बना लेंगे जिससे वे किसी भी उच्च लोक तक पहुँच जाएँगे । ऐसे आसुरी व्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदहारण रावण था । उसने लोगों के समक्ष ऐसी योजना प्रस्तुत की थी, जिसके द्वारा वह एक ऐसी सीढ़ी बनाने वाला था, जिससे कोई भी व्यक्ति वेदों में वर्णित यज्ञों को सम्पन्न किये बिना स्वर्गलोक को जा सकता था । उसी प्रकार से आधुनिक युग के ऐसे ही आसुरी लोग यान्त्रिक विधि से उच्चतर लोकों तक पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं । ये सब मोह के उदहारण हैं । परिणाम यह होता है कि बिना जाने हुए वे नरक की ओर बढ़ते जाते हैं । यहाँ पर मोहजाल शब्द अत्यन्त सार्थक है । जाल का तात्पर्य है मनुष्य मछली कीभाँति मोह रूपी जाल में फँस कर उससे निकल नहीं पाता ।

17.

bhaktiprasad.in

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः |
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् || 16.17 ||

अपने को श्रेष्ठ मानने वाले तथा सदैव घमंड करने वाले, सम्पत्ति तथा मिथ्या प्रतिष्ठा से मोहग्रस्त लोग किसी विधि-विधान का पालन न करते हुए कभी-कभी नाम मात्र के लिए बड़े ही गर्व के साथ यज्ञ करते हैं ।

Self-complacent and always impudent, deluded by wealth and false prestige, they sometimes perform sacrifices in name only without following any rules or regulations.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

अपने को सब कुछ मानते हुए, किसी प्रमाण या शास्त्र की परवाह न करके आसुरी लोग कभी-कभी तथाकथित धार्मिक या याज्ञिक अनुष्ठान करते हैं । चूँकि वे किसी प्रमाण में विश्वास नहीं करते, अतएव वे अत्यन्त घमंडी होते हैं । थोड़ी सी सम्पत्ति तथा झूठी प्रतिष्ठा पा लेने के कारण जो मोह (भ्रम) उत्पन्न होता है, उसी के कारण ऐसा होता है । कभी-कभी ऐसे असुर उपदेशक की भूमिका निभाते हैं, लोगों को भ्रान्त करते हैं और धार्मिक सुधारक या ईश्वर के अवतारों के रूप में प्रसिद्ध हो जाते हैं । वे यज्ञ करने का दिखावा करते हैं, या देवताओं की पूजा करते हैं, या अपने निजी ईश्वर की सृष्टि करते हैं । सामान्य लोग उनका प्रचार ईश्वर कह कर करते हैं, उन्हें पूजते हैं और मुर्ख लोग उन्हें धर्म या आध्यात्मिक ज्ञान के सिद्धान्तों में बढ़ा-चढ़ा मानते हैं । वे संन्यासी का वेश धारण कर लेते हैं और उस वेश में सभी प्रकार का अधर्म करते हैं । वास्तव में इस संसार से विरक्त होने वाले पर अनेक प्रतिबन्ध होते हैं । लेकिन ये असुर इन प्रतिबन्धों की परवाह नहीं करते । वे सोचते हैं जो भी मार्ग बना लिया जाय, वही अपना मार्ग है । उनके समक्ष आदर्श मार्ग जैसी कोई वस्तु नहीं, जिस पर चला जाय । यहाँ पर अविधिपूर्वकम् शब्द पर बल दिया गया है जिसका अर्थ है विधि-विधानों की परवाह न करते हुए । ये सारी बातें सदैव अज्ञान तथा मोह के कारण होती हैं ।

18.

bhaktiprasad.in

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः |
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसुयकाः || 16.18 ||

मिथ्या अहंकार, बल, दर्प, काम तथा क्रोध से मोहित होकर आसुरी व्यक्ति अपने शरीर में तथा अन्यों के शरीर में स्थित भगवान् से ईर्ष्या और वास्तविक धर्म की निन्दा करने लगते हैं ।

Bewildered by false ego, strength, pride, lust and anger, the demon becomes envious of the Supreme Personality of Godhead, who is situated in his own body and in the bodies of others, and blasphemes against the real religion.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

आसुरी व्यक्ति भगवान् की श्रेष्ठता का विरोधी होने के कारण शास्त्रों में विश्वास करना पसन्द नहीं करता । वह शास्त्रों तथा भगवान् के अस्तित्व इन दोनों से ही ईर्ष्या करता है । यह ईर्ष्या उसकी तथाकथित प्रतिष्ठा तथा धन एवं शक्ति के संग्रह से उत्पन्न होती है । वह यह नहीं जनता कि वर्तमान जीवन अगले जीवन की तैयारी है । इसे न जानते हुए वह वास्तव में अपने प्रति तथा अन्यों के प्रति भी द्वेष करता है । वह अन्य जीवधारियों की तथा स्वयं अपनी हिंसा करता है । वह भगवान् के परम नियन्त्रण की चिन्ता नहीं करता, क्योंकि उसे ज्ञान नहीं होता । शास्त्रों तथा भगवान् से ईर्ष्या करने के कारण वह ईश्वर के अस्तित्व के विरुद्ध झूठे तर्क प्रस्तुत करता है और शास्त्रीय प्रमाण को अस्वीकार करता है । वह प्रत्येक कार्य में अपने को स्वतन्त्र तथा शक्तिमान मानता है । वह सोचता है कि कोई भी शक्ति, बल या सम्पत्ति में उसकी समता नहीं कर सकता, अतः वह चाहे जिस तरह कर्म करे, उसे कोई रोक नहीं सकता । यदि उसका कोई शत्रु उसे ऐन्द्रिय कार्यों में आगे बढ़ने से रोकता है, तो वह उसे अपनी शक्ति से छिन्न-भिन्न करने की योजनाएँ बनाता है ।

19.

bhaktiprasad.in

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् |
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु || 16.19 ||

जो लोग ईर्ष्यालु तथा क्रूर हैं और नराधम हैं, उन्हें मैं निरन्तर विभिन्न आसुरी योनियों में, भवसागर में डालता रहता हूँ ।

Those who are envious and mischievous, who are the lowest among men, are cast by Me into the ocean of material existence, into various demoniac species of life.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

इस श्लोक में स्पष्ट इंगित हुआ है कि किसी जीव को किसी विशेष शरीर में रखने का परमेश्वर को विशेष अधिकार प्राप्त है । आसुरी लोग भले ही भगवान् की श्रेष्ठता को न स्वीकार करें और वे अपनी निजी सनकों के अनुसार कर्म करें, लेकिन उनका अगला जन्म भगवान् के निर्णय पर निर्भर करेगा, उन पर नहीं । श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध में कहा गया है कि मृत्यु के बाद जीव को माता के गर्भ में रखा जाता है, जहाँ उच्च शक्ति के निरिक्षण में उसे विशेष प्रकार का शरीर प्राप्त होता है । यही कारण है कि संसार में जीवों की इतनी योनियाँ प्राप्त होती हैं - यथा पशु, कीट, मनुष्य आदि । ये सब परमेश्वर द्वारा व्यवस्थित हैं । वे अकस्मात् नहीं आईं । जहाँ तक असुरों की बात है , यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि ये असुरों के गर्भ में निरन्तर रखे जाते हैं । इस प्रकार ये ईर्ष्यालु बने रहते हैं और मानवों में अधम हैं । ऐसे आसुरी योनि वाले मनुष्य सदैव काम से पूरित रहते हैं, सदैव उग्र, घृणास्पद तथा अपवित्र होते हैं । जंगलों के अनेक शिकारी मनुष्य आसुरी योनि से सम्बन्धित माने जाते हैं ।

20.

bhaktiprasad.in

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनिजन्मनि |
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् || 16.20 ||

हे कुन्तीपुत्र! ऐसे व्यक्ति आसुरी योनि में बारम्बार जन्म ग्रहण करते हुए कभी भी मुझ तक पहुँच नहीं पाते । वे धीरे-धीरे अत्यन्त अधम गति को प्राप्त होते हैं ।

Attaining repeated birth amongst the species of demoniac life, such persons can never approach Me. Gradually they sink down to the most abominable type of existence.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यह विख्यात है कि ईश्वर अत्यन्त दयालु हैं, लेकिन यहाँ पर हम देखते हैं कि वे असुरों पर कभी भी दया नहीं करते । यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि आसुरी लोगों को जन्म जन्मान्तर तक उनके समान असुरों के गर्भ में रखा जाता है और ईश्वर की कृपा प्राप्त न होने से उनका अधःपतन होता रहता है, जिससे अन्त में उन्हें कुत्तों, बिल्लियों तथा सूकरों जैसा शरीर मिलता है । यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि ऐसे असुर जीवन की किसी भी अवस्था में ईश्वर की कृपा का भाजन नहीं बन पाते । वेदों में भी कहा गया है कि ऐसे व्यक्ति अधःपतन होने पर कूकर-सूकर बनते हैं । इस प्रसंग में यह तर्क किया जा सकता है कि यदि ईश्वर ऐसे असुरों पर कृपालु नहीं हैं तो उन्हें सर्व कृपालु क्यों कहा जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि वेदान्तसूत्र से पता चलता है कि परमेश्वर किसी से घृणा नहीं करते । असुरों को निम्नतम (अधम) योनि में रखना उनकी कृपा की अन्य विशेषता है । कभी-कभी परमेश्वर असुरों का वध करते हैं, लेकिन यह वध भी उनके लिए कल्याणकारी होता है, क्योंकि वैदिक साहित्य से पता चलता है कि जिस किसी का वध परमेश्वर द्वारा होता है, उसको मुक्ति मिल जाती है । इतिहास में ऐसे असुरों के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं - यथा रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, जिन्हें मारने के लिए भगवान् ने विविध अवतार धारण किये । अतएव असुरों पर ईश्वर की कृपा तभी होती है, जब वे इतने भाग्यशाली होते हैं कि ईश्वर उनका वध करें ।

bhaktiprasad.in

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः |
कामः क्रोधस्तथा लोभास्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् || 16.21 ||

इस नरक के तीन द्वार हैं - काम, क्रोध और लोभ । प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि इन्हें त्याग दे, क्योंकि इनसे आत्मा का पतन होता है ।

There are three gates leading to this hell-lust, anger, and greed. Every sane man should give these up, for they lead to the degradation of the soul.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यहाँ पर आसुरी जीवन आरम्भ होने का वर्णन हुआ है । मनुष्य अपने काम को तुष्ट करना चाहता है, किन्तु जब उसे पूरा नहीं कर पाता तो क्रोध तथा लोभ उत्पन्न होता है । जो बुद्धिमान मनुष्य आसुरी योनि में नहीं गिरना चाहता, उसे चाहिए कि वह इन तीनों शत्रुओं का परित्याग कर दे, क्योंकि ये आत्मा का हनन इस हद तक कर देते हैं कि इस भवबन्धन से मुक्ति की सम्भावना नहीं रह जाती ।

22.

bhaktiprasad.in

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः |
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् || 16.22 ||

हे कुन्तीपुत्र ! जो व्यक्ति इन तीनों नरक-द्वारों से बच पाता है, वह आत्म-साक्षात्कार के लिए कल्याणकारी कार्य करता है और इस प्रकार क्रमशः परम गति को प्राप्त होता है |

The man who has escaped these three gates of hell, O son of Kuntī, performs acts conducive to self-realization and thus gradually attains the supreme destination.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

मनुष्य को मानव-जीवन के तीन शत्रुओं - काम, क्रोध तथा लोभ - से अत्यन्त सावधान रहना चाहिए | जो व्यक्ति जितना ही इन तीनों से मुक्त होगा, उतना ही उसका जीवन शुद्ध होगा | तब वह वैदिक साहित्य में आदिष्ट विधि-विधानों का पालन कर सकता है | इस प्रकार मानव जीवन के विभिन्न विधि-विधानों का पालन करते हुए वह अपने आपको धीरे-धीरे आत्म-साक्षात्कार के पद पर प्रतिष्ठित कर सकता है | यदि वह इतना भाग्यशाली हुआ कि इस अभ्यास से कृष्णभावनामृत के पद तक उठ सके तो उसकी सफलता निश्चित है | वैदिक साहित्य में कर्म तथा कर्मफल की विधियों का आदेश है, जिससे मनुष्य शुद्धि की अवस्था (संस्कार) तक पहुँच सके | सारी विधि काम, क्रोध तथा लोभ के परित्याग पर आधारित है | इस विधि का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य आत्म-साक्षात्कार के उच्चपद तक उठ सकता है और इस आत्म-साक्षात्कार की पूर्णता भक्ति में है | भक्ति में बद्धजीव की मुक्ति निश्चित है | इसीलिए वैदिक पद्धति के अनुसार चार आश्रमों तथा चार वर्णों का विधान किया गया है | विभिन्न जातियों (वर्णों) के लिए विभिन्न विधि-विधानों की व्यवस्था है | यदि मनुष्य उनका पालन कर पाता है, तो वह स्वतः ही आत्म-साक्षात्कार के सर्वोच्चपद को प्राप्त कर लेता है | तब उसकी मुक्ति में कोई सन्देह नहीं रह जाता |

23.

bhaktiprasad.in

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः |
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् || 16.23 ||

जो शास्त्रों के आदेशों की अवहेलना करता है और मनमाने ढंग से कार्य करता है, उसे न तो सिद्धि, न सुख, न ही परमगति की प्राप्ति हो पाती है ।

But he who discards scriptural injunctions and acts according to his own whims attains neither perfection, nor happiness, nor the supreme destination.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जैसा कि पहले कहा जा चुका है मानव समाज के विभिन्न आश्रमों तथा वर्णों के लिए शास्त्रविधि दी गयी है । प्रत्येक व्यक्ति को इन विधि-विधानों का पालन करना होता है । यदि कोई इनका पालन न करके काम, क्रोध और लोभवश स्वेच्छा से कार्य करता है, तो उसे जीवन में कभी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती | दूसरे शब्दों में, भले ही मनुष्य ये सारी बातें सिद्धान्त के रूप में जानता रहे, लेकिन यदि वह इन्हें अपने जीवन में नहीं उतार पाता, तो वह अधम जाना जाता है । मनुष्ययोनि में जीव से आशा की जाती है कि वह बुद्धिमान बने और सर्वोच्च पद तक जीवन को ले जाने वाले विधानों का पालन करे । किन्तु यदि वह इनका पालन नहीं करता, तो उसका अधःपतन हो जाता है । लेकिन फिर भी जो विधि-विधानों तथा नैतिक सिद्धान्तों का पालन करता है, किन्तु अन्ततोगत्वा परमेश्वर को समझ नहीं पाता, तो उसका सारा ज्ञान व्यर्थ जाता है । और यदि वह ईश्वर के अस्तित्व को मान भी ले, किन्तु यदि भगवान् की सेवा नहीं करता, तो भी उसके सारे प्रयास निष्फल हो जाते हैं । अतएव मनुष्य को चाहिए कि अपने आप को कृष्णभावनामृत तथा भक्ति के पद तक ऊपर ले जाये । तभी वह परम सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं । काम-कारतः शब्द अत्यन्त सार्थक है । जो व्यक्ति जान बूझ का नियमों का अतिक्रमण करता है, वह काम के वश में होकर कर्म करता है । वह जानता है कि ऐसा करना मना है, लेकिन फिर भी वह ऐसा करता है । इसी को स्वेच्छाचार कहते हैं । यह जानते हुए भी कि अमुक काम करना चाहिए, फिर भी वह उसे नहीं करता है, इसीलिए उसे स्वेच्छा कारी कहा जाता है । ऐसे व्यक्ति अवश्य ही भगवान् द्वारा दंडित होते हैं । ऐसे व्यक्तियों को मनुष्य जीवन की सिद्धि प्राप्त नहीं हो पाती । मनुष्य जीवन तो अपने आपको शुद्ध बनाने के लिए है, किन्तु जो व्यक्ति विधि-विधानों का पालन नहीं करता, वह अपने को न तो शुद्ध बना सकता है, न ही वास्तविक सुख प्राप्त कर सकता है |

24.

bhaktiprasad.in

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ |
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि || 16.24 ||

अतएव मनुष्य को यह जानना चाहिए कि शास्त्रों के विधान के अनुसार क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है । उसे विधि-विधानों को जानकर कर्म करना चाहिए जिससे वह क्रमशः ऊपर उठ सके ।

One should understand what is duty and what is not duty by the regulations of the scriptures. Knowing such rules and regulations, one should act so that he may gradually be elevated.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जैसा कि पन्द्रहवें अध्याय में कहा जा चुका है वेदों के सारे विधि-विधान कृष्ण को जानने के लिए हैं । यदि कोई भगवद्गीता से कृष्ण को जान लेता है और भक्ति में प्रवृत्त होकर कृष्णभावनामृत को प्राप्त होता है, तो वह वैदिक साहित्य द्वारा प्रदत्त ज्ञान की चरम सिद्धि तक पहुँच जाता है । भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने इस विधि को अत्यन्त सरल बनाया - उन्होंने लोगों से केवल हरे कृष्ण महामन्त्र जपने तथा भगवान् की भक्ति में प्रवृत्त होने और अर्चविग्रह को अर्पित भोग का उच्छिष्ठ खाने के लिए कहा । जो व्यक्ति इन भक्ति कार्यों में संलग्न रहता है, उसे वैदिक साहित्य से अवगत और सार तत्त्व को प्राप्त हुआ माना जाता है । निस्सन्देह, उन सामान्य व्यक्तियों के लिए, जो कृष्णभावनाभावित नहीं हैं, या भक्ति में प्रवृत्त नहीं हैं, करणीय तथा अकरणीय कर्म का निर्णय वेदों के आदेशों के अनुसार किया जाना चाहिए । मनुष्य को तर्क किये बिना तदनुसार कर्म करना चाहिए । इसी को शास्त्र के नियमों का पालन करना कहा जाता है । शास्त्रों में वे चार मुख्य दोष नहीं पाये जाते, जो बद्धजीव में होते हैं । ये हैं - अपूर्ण इन्द्रियाँ, कपटता, त्रुटि करना तथा मोहग्रस्त होना । इन चार दोषों के कारण बद्धजीव विधि-विधान बनाने के लिए अयोग्य होता है, अतएव विधि-विधान, जिनका उल्लेख शास्त्र में होता है जो इन दोषों से परे होते हैं, सभी बड़े-बड़े महात्माओं, आचार्यों तथा महापुरुषों द्वारा बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार कर लिए जाते हैं । भारत में आध्यात्मिक विद्या के कई दल हैं, जिन्हें प्रायः दो श्रेणियों में रखा जाता है - निराकारवादी और साकारवादी । दोनों ही दल वेदों के नियमों के अनुसार अपना जीवन बिताते हैं । शास्त्रों के नियमों का पालन किये बिना कोई सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता । अतएव जो शास्त्रों के तात्पर्य को वास्तव में समझता है, वह भाग्यशाली माना जाता है ।

तात्पर्य

मानवसमाज में समस्त पतनों का मुख्य कारण भागवतविद्या के नियमों के प्रति द्वेष है । यह मानव जीवन का सर्वोच्च अपराध है । अतएव भगवान् की भौतिक शक्ति अर्थात् माया त्रयतापों के रूप में हमें सदैव कष्ट देती रहती है । यह भौतिक शक्ति प्रकृति के तीन गुणों से बनी है । इसके पूर्व कि भगवान् के ज्ञान का मार्ग खुले, मनुष्य को कम से कम सतोगुण तक ऊपर उठना होता है । सतोगुण तक उठे बिना वह तमो तथा रजोगुणोंमेंरहता है, जो आसुरी जीवन के कारणस्वरूप हैं । रजो तथा तमोगुणी व्यक्ति शास्त्रों, पवित्र मनुष्यों तथा भगवान् के समुचित ज्ञान की खिल्ली उड़ाते हैं । वे गुरु के आदेशों का उल्लंघन करते हैं और शास्त्रों के विधानों की परवाह नहीं करते | वे भक्ति की महिमा का श्रवण करके भी उसके प्रति आकृष्ट नहीं होते | इस प्रकार वे अपनी उन्नति का अपना निजी मार्ग बनाते हैं | मानव समाज के ये ही कतिपय दोष हैं, जिनके कारण आसुरी जीवन बिताना पड़ता है | किन्तु यदि उपयुक्त तथा प्रामाणिक गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त हो जाता है, तो उसका जीवन सफल हो जाता है क्योंकि गुरु उच्चपद की ओर उन्नति का मार्ग दिखा सकता है |

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय 'दैवी तथा आसुरी स्वभाव' का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ |

हरे कृष्ण

|| इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय
"दैवी तथा आसुरी स्वभाव" का तात्पर्य पूर्ण हुआ ||

निताई गौर हरी बोल

DigitalWebdia